गोरा

अध्याय 2

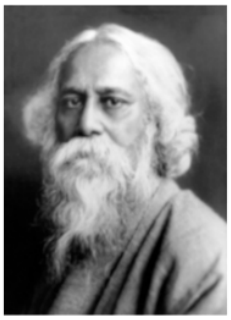

हिन्दी ADDA

रविंद्रनाथ टैगोर

गोरा

अध्याय 2

https://www.hindiadda.com/gora-part-ii/

अंग्रेज़ी नावल विनय ने बहुत पढ़ रखे थे, किंतु उसका भद्र बंगाली परिवार का संस्कार कहाँ जाता? इस तरह उत्सुक मन लेकर किसी स्त्री को देखने की कोशिश करना उस स्त्री के लिए अपमानजनक है और अपने लिए निंदनीय, इस बात को वह किसी भी तर्क के सहारे मन से निकाल न सका। इससे विनय के मन में आनंद के साथ-साथ ग्लानि का भी उदय हुआ। उसे लगा कि उसका कुछ पतन हो रहा है। यद्यपि इसी बात को लेकर गोरा से उसकी बहस हो चुकी थी, फिर भी जहाँ सामाजिक अधिकार नहीं है वहाँ किसी स्त्री की ओर प्रेम की आँखों से देखना उसके अब तक के जीवन के संचित संस्कार के विरुध्द था।

विनय का उस दिन गोरा के घर जाना नहीं हुआ। मन-ही-मन अनेक सवाल-जवाब करता हुआ घर लौट आया। अगले दिन तीसरे पहर घर से निकलकर घूमता-फिरता अंत में गोरा के घर वह पहुँचा, वर्षा का लंबा दिन बीत चुका था और संध्यात का अंधकार घना हो चुका था। गोरा बत्ती जलाकर कुछ लिखने बैठ गया था।

गोरा ने कागज़ की ओर से आँखें उठाए बिना ही कहा, "क्यों भाई विनय, हवा किधर की बह रही है?"

उसकी बात अनसुनी करते हुए विनय ने कहा, "गोरा, तुमसे एक बात पूछता हूँ। भारतवर्ष क्या तुम्हारे नज़दीक बहुत सत्य है- बहुत स्पष्ट है? तुम तो दिन-रात उसका ध्याकन करते हो- किंतु कैसे ध्यानन करते हो?"

गोरा कुछ देर लिखना छोड़कर अपनी तीखी दृष्टि से विनय के चेहरे की ओर देखता रहा। फिर कलम रखकर कुर्सी को पीछे की ओर झुकाता हुआ बोला, "जहाज़ का कप्तान जब समुद्र पार कर रहा हाता है तब खाते-पीते, सोते-जागते जैसे सागर-पार के बंदरगाह पर उसका ध्याबन केंद्रित रहता है, वैसे ही मैं भारतवर्ष का ध्याजन रखता हूँ।"

विनय, "और तुम्हारा यह भारतवर्ष है कहाँ?"

छाती पर हाथ रखकर गोरा ने कहा, "मेरा यहाँ का दिशासूचक दिन-रात जिधर सुई किए रहता है वहीं; तुम्हारे मार्शमैन साहब की 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में नहीं!"

विनय, "जिधर को वह सुई रहती है उधर कुछ है भी?"

उत्तेजित होकर गोरा ने कहा, "है कैसे नहीं? मैं राह भूल सकता हूँ, मैं डूब सकता हूँ.... किंतु मेरी उस लक्ष्मी का बंदरगाह फिर भी है। वही मेरा पूर्णरूप भारतवर्ष है.... धन से पूर्ण, ज्ञान से पूर्ण, धर्म से पूर्ण। वह भारतवर्ष कहीं नहीं है, और है केवल यही चारों ओर फैला हुआ झूठ- यह तुम्हारा कलकत्ता शहर, ये दफ्तर, यह अदालत, ये कुछ-एक ईंट-पत्थर के बुलबुले? छी: छी:!"

बात कहकर कुछ देर गोरा एकटक विनय के चेहरे की ओर देखता रहा। विनय उत्तर न देकर सोचता रहा। गोरा ने फिर कहा, "यह जहाँ हम पढ़ते-सुनते हैं, नौकरी की उम्मीदवारी में घूमते-फिरते हैं, दस से पाँच बजे तक की मुर्दा बेगारी की तरह क्या जाने क्या करते रहते हैं, इसका कोई ठिकाना नहीं है। इस जादू के बने भारतवर्ष को ही हम सच माने बैठे हैं, इसीलिए कोटिश: लोग झूठे मान को मान, झूठे कर्म को कर्म समझकर पागलों-से दिन-रात भटक रहे हैं। इस मरीचिका के जाल से किसी भी तरह से क्या हम छुटकारा पा सकते हैं? इसीलिए हम रोज़ सूख-सूखकर मरते जा रहे हैं। एक सच्चा भारतवर्ष है, परिपूर्ण भारतवर्ष; उस पर स्थिर हुए बिना हम लोग न बुध्दि से, न हृदय से सच्चा जीवन-रस खींच सकेंगे। इसीलिए कहता हूँ, अन्य सब भूलकर किताब की विद्या, ख़िताब की माया, नोच-खसोट के लालच- सबकी पुकार अनसुनी करके उसी बंदरगाह की ओर जहाज़ को ले जाना होगा; फिर चाहे डूबें, मरें तो मरे। यों ही मैं भारतवर्ष की सच्ची, पूर्ण मूर्ति को नहीं भूल सकता!"

विनय, "यह सब कहीं जोश की बात तो नहीं है तुम सच कह रहे हो?"

गोरा ने बादल की तरह गरजकर कहा, "सच कह रहा हूँ।"

विनय, "और जो तुम्हारी तरह नहीं देख सकते...."

मुट्ठियाँ बाँधते हुए गोरा ने कहा, "उन्हें दिखलाना होगा। यही तो हम लोगों का काम है। सच्चाई का रूप स्पष्ट न देख पाने से लोग न जाने कौन-सी परछाईं के सम्मुख आत्म-समर्पण कर देंगे। भारतवर्ष की सर्वांगीण मूर्ति सबके सामने खड़ी कर दो- तब लोग पागल हो उठेंगे; तब घर-घर चंदा माँगते हुए नहीं फिरना पड़ेगा। लोग खुद जान देने के लिए एक-दूसरे को धकेलते हुए आगे आएँगे।"

विनय, "या तो मुझे भी अन्य बीसियों लोगों की तरह बहते चले जाने दो, या मुझे भी वही मूर्ति दिखलाओ"

गोरा, "साधना करो। मन में दृढ़ विश्वास हो तो कठोर साधना में ही सुख मिलेगा। हमारे शौकिया पैट्रियट लोगों में सच्चा विश्वास नहीं है, इसीलिए वे न अपने, न दूसरों के सामने कोई ज़ोरदार दावा कर पाते हैं। स्वयं कुबेर भी यदि उन्हें वर आते तो शयद वे लाट-साहब के चपरासी की गिलटदार पेटी से अधिक कुछ माँगने का साहस न कर पाते। उनमें विश्वास नहीं है, इसीलिए कोई आशा भी नहीं है।"

विनय, "गोरा, सबकी प्रकृति एक जैसी नहीं होती। तुमने अपना विश्वास अपने भीतर से पाया है, और अपनी ताकत के संबल से खड़े हो सकते हो, इसीलिए तुम दूसरों की अवस्था ठीक तरह समझ ही नहीं सकते। मैं कहता हूँ तुम मुझे चाहे जिस एक काम में लगा दो, दिन-रात मुझसे कसकर काम लो। नहीं तो जितनी देर तक मैं तुम्हारे पास रहता हूँ, उतनी देर तो लगता है कि मैं कुछ पाया; पर दूर हटते ही कुछ भी ऐसा नहीं पाता जिसे मुट्ठी में पकड़कर रख सकूँ।"

गोरा, "काम की बात कहते हो? इस वक्त हमारा एकमात्र काम यह है कि जो कुछ स्वदेश का है उसके प्रति बिना संकोच, बिना संशय संपूर्ण श्रध्दा जताकर देश के अन्य अविश्वासियों में भी उसी श्रध्दा का संचार कर दें। देश के मामले में लज्जित हो-होकर हमने अपने मन को गुलामी के विष से दुर्बल कर दिया है; हममें से प्रत्येक अपने सदाचरण द्वारा इसका प्रतिकार करे तभी हमें काम करने का क्षेत्र मिलेगा। अभी जो भी काम हम करना चाहेंगे, वह केवल इतिहास की स्कूली किताब लेकर दूसरों की नकल करना मात्र होगा। उस झूठे काम में हम क्या कभी भी सच्चाई से अपना पूरा मन-प्राण लगा सकेंगे? उसे तो अपने को केवल और हीन ही बना लेंगे।"

इसी समय हाथ में हुक्का लिए थोड़े अलस भाव से महिम ने कमरे में प्रवेश किया। यह समय महिम के दफ्तर से लौटकर, नाश्ता करके पान का एक बीड़ा मुँह में और छः-सात बीड़े डिबिया में रखकर, सड़क के किनोर बैठकर हुक्का पीने का था। फिर थोड़ी देर बाद ही एक-एक करके पड़ोस के यार-दोस्त आ जुटेंगे, तब डयोढ़ी से लगे हुए कमरे में ताश का खेल जमेगा।

बड़े भाई के कमरे में आते ही कुर्सी छोड़कर गोरा उठ खड़ा हुआ। महिम ने हुक्के में कश लगाते कहा, "भारत के उध्दार के लिए परेशान हो, पहले भाई का उध्दार तो करो"

गोरा महिम के चेहरे की ओर देखता रहा। महिम बोले, "हमारे दफ्तर में ज नया बाबू आया है-लकड़बग्घे जैसा मुँह है- वह बहुत ही शैतान है। बाबुओं को बैबून कहता है; किसी की यदि माँ भी मर जाए तो भी छुट्टी देना नहीं चाहता; कहता है, बहाना है। किसी भी बंगाली को किसी महीने में पूरी तनख्वाह नहीं मिलती.... जुर्माना करता रहता है। उसके बारे में अखबार में एक चिट्ठी छपी थी; पट्ठा समझता है कि मेरा ही काम है। खैर, बिल्कुल झूठ भी नहीं समझता। इसलिए अब अपने नाम से उसका एक कड़ा प्रतिवाद छपाए बिना टिकने नहीं देगा। तुम लोग तो यूनिवर्सिटी के ज्ञान-मंथन से मिले हुए दो रत्न हो; जरा यह चिट्ठी अच्छी तरह लिख देनी होगी। जहाँ-तहाँ उसमें ईवन-हैंडेड जस्टिस, नेवर फेलिंग जेनेरासिटी, काइंड कर्टियसनेस इत्यादि-इत्यादि फिकरे जड़ देने होंगे।"

गोरा चुप ही रहा। हँसकर विनय ने कहा, "दादा, एक ही साँस में इतने सारे झूठ चला दोगे?"

महिम, "शठे शाठ्यं समाचरेत्। बहुत दिनों तक उसके साथ में रहा हूँ, सब-कुछ मेरा देखा हुआ है। जिस ढंग से झूठी बातें वे लोग चला सकते हैं उसकी प्रशंसा करनी पड़ती है। ज़रूरत पड़ने पर कुछ भी उनसे बचा नहीं है। उनमें से एक झूठ बोले तो बाकी सब गीदड़ों की तरह एक ही सुर में 'हुआँ-हुआँ' चिल्ला उठते हैं। हमारी तरह एक को फँसाकर दूसरा वाहवाही पाना नहीं चाहता। यह सत्य जानो, उनको धोखा देने में कोई पाप नहीं है.... हाँ, पकड़ा न जाए, बस।"

महिम बात कहकर ही-ही करते हुए हँसने लगे। विनय से भी हँसे बिना नहीं रहा गया।

महिम बोले, "तुम लोग उनके सामने सच बात कहकर उन्हें शर्मिंदा करना चाहते हो। ऐसी अक्ल भगवान ने तुम्हें न दी होती तो देश की यह हालत क्यों होती इतना तो समझना चाहिए कि जिसके पास ताकत है, वह यदि सेंध भी लगा रहा हो तो हिम्मत दिखाकर उसे पकड़वाये जाने पर वह शर्म से सिर नहीं झुकाता, बल्कि उल्टे चिमटा उठाकर साधू की तरह हुँकारकर मारने आता है। बताओ, यह सच है कि नहीं?"

महिम बात कहकर ही-ही करते हुए हँसने लगे। विनय से भी हँसे बिना नहीं रहा गया।

महिम बोले, "तुम उनके सामने सच बात कहकर उन्हें शर्मिंदा करना चाहते हो। ऐसी अक्ल भगवान ने तुम्हें न दी होती तो देश की यह हालत क्यों होती इतना तो समझना चाहिए कि जिसके पास ताकत है, वह यदि सेंध भी लगा रहा हो तो हिम्मत

दिखाकर उसे पकड़वाने जाने पर शर्म से सिर नहीं झकाता, बल्कि उल्टे चिमटा उठाकर साधू की तरह हुंकारकर मारने आता है। बताओ, यह सच है कि नहीं?"

विनय, "यह तो ठीक है।"

महिम, "उससे भी बड़े झूठ के कोल्हू से बिना मूल्य का जो तेल मिलता है वह एक-आध छटाँक उसके पैरों पर चुपड़कर यदि कहें-साधू महाराज, बाबा परमहंसजी! कृपा करके अपनी झोली ज़रा झाड़ दीजिए.... उसकी धूल पाकर भी हमतर जाएँगे.... तो शायद अपने ही घर के चोरी हुए माल का कम-से-कम एक हिस्सा फिर अपने हाथ लग सकता है, और साथ ही शांति भंग की भी आशंका नहीं रहती। सोचकर देखो तो इसी को ही कहते हैं पैट्रियटिज्म। किंतु मेरा भैया बिगड़ रहा है। हिंदू होने के नाते वह मुझे बड़े भाई की तरह बहुत मान देता है; उसके सामने मेरी आज की बात ठीक बड़े भाई की-सी नहीं हुई। लेकिन भई, किया क्या जाय! झूठी बात के बारे में भी तो सच्ची बात कहनी पड़ती है! विनय, लेकिन वह लेख मुझे ज़रूर चाहिए। रुको.... मैंने कुछ नोट लिख रखे हैं, वह ले आऊँ।"

कश लगाते-लगाते महिम बाहर चले गए। गोरा ने विनय से कहा, "विनू, तुम दादा के कमरे में जाकर उन्हें बहलाओ। मैं ज़रा यह लेख पूरा कर लूँ।"

"सुनते हो? घबराओ नहीं; तुम्हारे पूजा-घर में नहीं आ रही, हवन पूरा करके ज़रा उस कमरे में आना.... तुमसे बात करनी है। दो नए सन्यासी आए हैं तो कुछ देर तक अब तुमसे भेंट नहीं हो सकेगी, यह मैं समझ गई। इसीलिए कहने आई थी। भूल नहीं जाना, ज़रूर आना!"

बात कहकर आनंदमई फिर घर-गृहस्थी के काम सँभालने लौट गईं।

कृष्णदयाल बाबू साँवले रंग के दोहरे बदन के व्यक्ति हैं कद अधिक लंबा नहीं। चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी आँखें ही नज़र आती हैं, बाकी पूरा चेहरा खिचड़ी रंग की दाढ़ी-मूँछों से ढँका हुआ है। हमेशा गेरुए रंग के रेशमी कपड़े पहने रहते हैं; पैरों में खड़ाऊँ, हाथ के

निकट ही पीतल का कमंडल रहता है। सामने की ओर चाँद दीखने लगी है, बाकी लंबे-लंबे बाल सिर के मध्य में एक बड़ी-सी गाँठ के रूप में बँधे रहते हैं।

एक समय एक पश्चिम में रहते हुए पलटनिया गोरों के साथ हिल-मिलकर मांस-मदिरा सभी कुछ खाते-पीते रहे। उन दिनों देश के पुजारी-पुरोहित, वह पौरुष समझते थे। अब ऐसी कोई बात ही नहीं होगी जिसे वह मानने को तैयार नहों। नए सन्यासी को देखते ही साधना की नई रीति सीखने के लिए उसके पास धरना देकर बैठ जाएँगे; मुक्ति के निगूढ़ पथ और योग की निगूढ़ प्रणालियों के लिए उनमें बेहद रुचि है। तांत्रिक साधना का अभ्यास करने के विचार से कुछ दिन वह उपदेश लेते रहे थे कि इस बीच किसी बौध्द श्रमण की खबर पाकर उनका मन फिर चंचल हो उठा है।

उनकी पहली स्त्री एक पुत्र को जन्म देकर मरीं, तब उनकी उम्र कोई तेईस बरस की थी। लड़के को ही माँ की मृत्यु का कारण मान, उस पर रोष करके उसे ससुराल में छोड़कर वैराग्य की सनक में कृष्णदयाल पश्चिम चले गए थे। वहाँ छ: महीनें के अंदर ही काशीवासी सार्वभौम महाशय की पितृहीना नातिन आनंदमई से उन्होंने विवाह कर लिया।

पश्चिम में ही कृष्णदयाल ने नौकरी की खोज की और तरह-तरह के उपायों से सरकारी नौकर-चाकरों में अपनी धाक जमा ली। इधर सार्वभौम महाशय की मृत्यु हो गई; कोई दूसरा संरक्षक न होने से उन्हें पत्नी को साथ ही रखना पड़ा इसी बीच जब सिपाही-विद्रोह हुआ तब युक्ति से दो-एक ऊँचे अंग्रेज़ अफसरों की जान बचाकर उन्होंने यश के साथ-साथ जागीर पाई। विद्रोह के कुछ दिन बाद ही नौकरी छोड़ दी और नवजात गोरा को लेकर कुछ समय काशी में ही रहते रहे। गोरा जब पाँच बरस का हुआ तब कृष्णदयाल कलकत्ता आ गए। बड़े लड़के महिम को उसके मामा के यहाँ से लाकर उन्होंने अपने पास रखा और पाल-पोसकर बड़ा किया। अब पिता के जान-पहचान वालों की कृपा से महिम सरकारी ख़जाने में नौकरी कर रहा है और तरक्की पा रहा है।

बचपन से ही गोरा मुहल्ले के जाने अन्य स्कूल वाले बच्चों का सरदार रहा है। मास्टरों और पंडितों का जीना दूभर कर देना ही उसका मुख्य काम और मनोरंजन रहा। कुछ होते ही वह विद्यार्थियों के क्लब में 'स्वाधीनता विहीन कौन-जीना चाहेगा?' आर 'बीस कोटि जनता का घर है' गाकर और अंग्रेजी में भाषण देकर छोटे विद्रोहियों के सेनापति बन बैठा। अंत में जब छात्र-सभा के झंडे के नीचे से निकलकर

वयस्कों की सभा में भी वह भाषण देने लगा, तब यह कृष्णदयाल बाबू के लिए मानो बड़े आश्चर्य का विषय हो गया।

देखते-देखते गोरा की बाहर के लोगों में धाक जम गई; किंतु घर में किसी ने उसे ज्यादा मान नहीं दिया। महिमतब नौकरी करने लगे थे; वह गोरा को कभी 'पैटिञ्यट बड़े भैया' और कभी 'हरीश मुकर्जी द सैकिंड' कहकर तरह-तरह से चिढ़ाकर उसे हतोत्साहित करने का प्रयत्न करते। बीच-बीच में बड़े भाई के साथ गोरा की हाथापाई होते-होते रह जाती। गोरा के अंग्रेज़ 'द्वेष से आनंदमई मन-ही-मन बहुत परेशान होतीं, और अनेक प्रकार से उसे शांत करने की चेष्टा करतीं, पर सब बेकार। गोरा रस्ता चलते कोई मौका देख किसी अंग्रेज़ से मार-पीट करके अपने को धन्य मानता।

इधर केशव बाबू की वक्तृताओं से प्रभावित होकर गोरा ब्रह्म-समाज की ओर विशेष आकृष्ट हुआ; उधर ठीक उसी समय कृष्णदयाल घोर रूप से आचारनिष्ठ हो उठे। यहाँ तक कि उनके कमरे में गोरा के जाने से भी वे बेचैन हो उठते। उन्होंने दो-तीन कमरों का मानो अपना स्वतंत्र महल बना लिया; घर के उतने हिस्से के द्वार पर उन्होंने 'साधनाश्रम' लिखकर लकड़ी की तख्ती लटका दी8।

गोरा का मन पिता के इन कारनामों के प्रति विद्रोही हो उठा। ये सब बेकार की बातें मैं नहीं सह सकता.... ये मेरी ऑखों में चुभतीं हैं- यह घोषित करके पिता से सभी संबंध तोड़कर गोरा बिल्कुल अलग हो जाने की बात सोचने लगा था, पर आनंदमई ने किसी तरह उसे समझा-बुझाकर रोक लिया था। पिता के पास जिन ब्राह्माण-पंडितों का आना-जाना होता रहता था, गोरा मौका मिलते ही उनके साथ बहस छेड़ देता था। बल्कि उसे बहस न कहकर बल दिखाना ही कहना ठीक होगा। उनमें से अनेकों का ज्ञान बहुत साधारण और अर्थ-लोभ असीम होता था; गोरा को वे हरा नहीं सकते थे बल्कि उससे ऐसे घबराते थे मानो वह बाधा हो। इन सबमें अकेले हरचंद विद्यावागीश के प्रति गोरा के मन में श्रध्दा थी। विद्यावागीश को कृष्णदयाल ने वेदांत-चर्चा करने के लिए नियुक्त किया था। पहली ही बार उनसे उग्र भाव से लड़ाई करने जाकर गोरा ने देखा कि उनसे लड़ाई चल ही नहीं सकती। केवल यह बात नहीं कि वह विद्वान थे; उनमें एक अत्यंत आश्चर्यजनक उदारता भी थी। केवल संस्कृति ऐसी अच्छी और साथ-साथ ऐसी प्रशस्त बुध्दि किसी की हो सकती है, गोरा इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। विद्यावागीश के स्वभाव में क्षमा और शांति का ऐसा अविचल धैर्य और गंभीरता थी कि उनके सामने स्वयं अपने को संयम न करना गोरा के लिए असंभव था। गोरा ने हरचंद्र से वेदांत-दर्शन पढ़ना शुरू किया। कोई

काम अधूरे ढंग से करना गोरा के स्वभाव में ही नहीं है, अत: वह दर्शन की आलोचना में बिल्कुल निमग्न हो गया।

इन्हीं दिनों संयोग से एक अंग्रेज़ मिशनरी ने किसी अखबार में हिंदू-शास्त्र और समाज पर आक्रमण करते हुए देश के लोगों को तर्क-युध्द की चुनौती दी। गोरा तो एकदम आग-बबूला हो गया। हालाँकि वह स्वयं मौका मिलने पर शास्त्र और लोकाचार की निंदा करके विरोधी मत के लोगों को भरसक पीड़ा पहुँचाता रहता था, किंतु हिंदू-समाज के प्रति एक विदेशी की अवहेलना मानो उसे बर्छी-सी चुभ गई।

गोरा ने अखबार में लड़ाई छेड़ दी। दूसरे पक्ष ने हिंदू-समाज में जितने दोष दिखाए थे गोरा ने उनमें से कोई भी ज़रा-सा भी स्वीकार नहीं किया। दोनों पक्षों से लंबी चिट्ठी-पत्री के बाद संपादक ने घोषित किया कि-इस विषय में और वाद-विवाह प्रकाशित नहीं किया जाएगा।

किंतु गोरा को तब बहुत गुस्सा चढ़ गया था। उसने 'हिंदुइज्म' नाम देकर अंग्रेज़ी में एक पुस्तक लिखना आरंभ कर दिया, जिसमें वह अपनी योग्यता के अनुसार सभी युक्तियों और शास्त्रों से हिंदू-धर्म और समाज की अनिन्द्य श्रेष्ठता के प्रमाण खोजकर संग्रह करने में जुट गया।

इस प्रकार मिशनरी के साथ लड़ाई करने जाकर गोरा धीरे-धीरे अपनी वकालत में स्वयं ही हार गया। उसने कहा, "हम अपने देश को विदेशी की अदालत में अभियुक्त की तरह खड़ा करके विदेशी कानून के अधीन उसका विचार क्यों होने दें? विलायत के आदर्श से एक-एक बात की तुलना कर हम न लज्जित होंगे, न गौरव ही मानेंगे। जिस देश में जन्मे हैं, उस देश के आचार, विश्वास, शास्त्र या समाज के लिए दूसरों के या अपने सामने ज़रा भी शर्मिंदा नहीं होंगे। देश का जो कुछ है सभी को सहर्ष और सगर्व भाव से सिर-माथे पर लेकर देश को और स्वयं को अपमान से बचाएँगे।"

ऐसा मानकर गोरा ने चोगी रखी, गंगा-स्नान और संध्या-वंदन आरम्भ किया, खान-पान और छुआ-छूत के नियम मानने लगा। तभी से वह रोज़ सुबह 'कैड' और 'स्नॉब' कह दिया करता था उसी को देखते ही उठ खड़ा होता और आदर से प्रणाम करता। इस नई भक्ति को लेकर महिम उस पर मनमाने व्यंग्य करता रहता, किंतु गोरा कभी उनका उत्तर नहीं देता।

अपने उपदेश और आचरण से गोरा ने समाज के एक गुट को मानो जगा दिया। वे एक बड़ी खींच-तान से मुक्त हो गए और मानो लंबी साँस लेकर कह उठे-हम अच्छे हैं

या बुरे, सभ्य हैं या असभ्य, इसके बारे में हम किसी को कोई जवाब नहीं देना चाहते.... सोलह आने हम केवल यह अनुभव करना चाहते हैं कि हम हैं!

किंतु गोरा में इन नए परिवर्तन से कृष्णदयाल प्रसन्न हुए हों, ऐसा नहीं जान पड़ा। बल्कि एक दिन उन्होंने गोरा को बुलाकर कहा, "देखो जी,हिंदू-शास्त्र बड़ी गहरी चीज़ है। ऋषि लोग जो धर्म स्थापित कर गए हैं उसकी गहराई को समझना जिस-तिसका काम नहीं है। मेरी समझ में, बिना समझे-बूझे उसे लेकर न उलझना ही अच्छा है। अभी तुम बच्चे हो, शुरू से अंग्रेज़ी पढ़ते हुए बड़े हुए हो। तुम जो ब्रह्म-समाज की ओर झुके थे वह तुम्हारे अधिकार के हिसाब से अच्छी ही बात थी। इसीलिए मैंने उसका बुरा नहीं माना, बल्कि उससे खुश ही था। लेकिन अब जिस रास्ते तुम चल रहे हो वह किसी तरह ठीक नहीं जान पड़ता। वह तुम्हारा मार्ग ही नहीं है।"

गोरा बोला, "आप यह क्या कहते हैं, बाबा? मैं भी तो हिंदू हूँ। हिंदू-धर्म का गूढ़ मर्म आज न समझ सकूँ तो कल तो समझूँगा, यदि कभी भी न समझूँ तब भी इसी पथ पर तो चलना होगा। हिंदू-समाज के साथ पूर्वजन्म का संबंध नहीं तोड़ सका, इसीलिए इस जन्म में ब्राह्मण के घर जन्मा। ऐसे ही जन्म-जन्मांतर के बाद इसी हिंदू-धर्म और हिंदू-समाज के भीतर से ही इसकी चरम सीमा तक पहुँच सकूँगा। कभी भ्रमवश दूसरे रास्ते की ओर मुड़ भी जाऊँ तो दुगने वेग से लौट आऊँगा।"

पर कृष्णदयाल सिर हिलाते-हिलाते कहते रहे, "अरे बाबा, हिंदू कहने भर से ही तो कोई हिंदू नहीं हो जाते। मुसलमान होना आसान है, ख्रिस्तान तो कोई भी हो सकता है.... किंतु हिंदू! यही तो एक मुश्किल बात है"

कृष्णदयाल, "बाबा, बहस करके तो तुम्हें ठीक नहीं समझा सकूँगा। पर तुम जो कहते हो एक तरह वह भी सच है। जिसका जो कर्म-फल है, जो निर्दिष्ट धर्म है, एक दिन घूम-फिरकर उसे उसी धर्म के पथ पर आना ही होगा.... उसे कोई रोक नहीं सकेगा। भगवान की जैसी इच्छा.... हम लोग क्या कर सकते हैं.... हम तो निमित्त मात्र हैं।"

कर्म-फल और भगवान की इच्छा, सोऽहंवाद और भक्ति-तत्व- कृष्णदयाल सभी कुछ एक जैसे भाव से ग्रहण करते हैं। इन सबमें परस्पर किसी प्रकार के समन्वय की ज़रूरत है, इसका अनुभव उन्हें कभी नहीं होगा।

संध्या-वंदन, स्नान-भोजन संपूर्ण करके अनेक दिन बाद आज कृष्णदयाल ने आनंदमई के कमरे में प्रवेश किया। फर्श पर अपना कंबल का आसन बिछाकर, सावधानी से चारों ओर के समस्त व्यापार से अपने को अलिप्त करके वह बैठ गए।

आनंदमई बोलीं, "सुनते हो, तुम तो तपस्या में लीन रहते हो- घर की कोई खबर नहीं लेते। गोरा की ओर से मुझे तो बराबर भय बना रहता है।"

कृष्णदयाल, "क्यों, भय किसका?"

आनंदमई, "यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकती। पर बराबर मुझे लगता है, गोरा ने आजकल यह जो हिंदूपन शुरू किया है वह उससे सधोगा नहीं; ऐसा ही चलता रहा तो अंत में न जाने क्या आफत आएगी! मैंने तो तुम्हें तब भी कहा था उसे जनेऊ मत पहनाओ! किंतु तुमने मेरी सुनी नहीं। तुहें तब भी कहा था उसे जनेऊ मत पहानाओ! किंतु तुमने मेरी सुनी नहीं। यही कहा कि एक लच्छी सूत गले में पहना देने से किसी का कुछ आता-जाता नहीं। लेकिन वह मात्र सूत तो नहीं है। अब उसे छुड़ाओगे कैसे?"

कृष्णदयाल, "ठीक है। सारा दोष मेरा ही है। और पहले तुमने जो भूल की सो? किसी तरह उसे छोड़ने को राज़ी नहीं हुईं। तब मैं भी गँवार था,धर्म-कर्म का कुछ ज्ञान तो था नहीं। अब जैसा होने से क्या ऐसा काम कर सकता?"

आनंदमई, "तुम चाहे जो कहो, मैं किसी तरह नहीं मान सकती कि मैंने कुछ अधर्म किया है। तुम्हें तो याद होगा, संतान के लिए मैंने क्या नहीं किया- जिसने जो कहा वही माना- कितने गंडे-तावीज़ बाँधे, कितने मंतर लिए, सब ही तुम्हें मालूम है। सपने में एक दिन देखा, मैं डलिया-भर तगर के फूल लेकर ठाकुरजी की पूजा करने बैठी हूँ, अचानक मुड़कर देखती हूँ कि डलिया में फूल नहीं है, फूल-सा कोमल शिशु है। आह क्या सपना मैंने देखा, कैसे तुम्हें बताऊँ! मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली, जल्दी से उसे गोद में लेने के लिए झुकी कि मेरी नींद खुल गई। इसके दस दिन बाद ही तो मैंने गोरा को पाया। वह ठाकुरजी की देन है.... वह क्या और किसी का था कि मैं किसी को उसे लौटा देती? पूर्वजन्म में उसे गर्भ में लेकर शायद मैंने बहुत कष्ट पाया था तभी वह अब मुझे 'माँ' कहकर पुकारने आ गया। कैसे, कहाँ से वह आया तुम्हीं सोचकर देखो तो। तब चारों ओर मार-काट मची हुई थी, अपनी ही जान के लाले पड़े हुए थे। ऐसे में दो पहर रात बीते जब वह मेंम हमारे घर छिपने आई तब तुम तो डर के मारे घर में रहने नहीं देना चाह रहे थे, मैंने ही तुमसे बचाकर उसे गोशाला में छिपा दिया। उसी रात बच्चे को जन्म देकर वह मर गई। बिना माँ-बाप के

उस बच्च को अगर मैं न बचाती तो क्या वह बचता? तुम्हारा क्या है.... तुम तो उसे पादरी को दे देना चाहते थे। पादरी को क्यों दें? पादरी क्या उसके माँ-बाप हैं? पादरी ने क्या उसकी प्राण-रक्षा की थी? ऐसे जो बच्चा मैंने पाया वह क्या पेट-जाए बच्चे से कम है? तुम चाहे जो कहो,जिन्होंने यह लड़का मुझे दिया है यदि वे स्वयं ही उसे न ले लें तो मैं जान गँवाकर भी उसे और किसी को देने वाली नहीं हूँ।"

कष्णदयाल, "यह तो जानता हूँ। खैर, अपने गोरा को लेकर तुम रहो, मैंने इसमें तो कभी कोई अड़चन नहीं दी। किंतु जब उसे अपना लड़का कहकर उसका परिचय दिया तब यज्ञोपवीत न होने से समाज कैसे मानता.... इसीलिए वह करना पड़ा। अब केवल दो ही बातें सोचने की है। न्याय से मेरी सारी संपत्ति पर महिम का ही हक है, इसलिए.... "

बीच में ही टोककर आनंदमई ने कहा, "तुम्हारी संपत्ति का हिस्सा कौन लेना चाहता है। तुमने जो कुछ जमा किया है महिम को ही सब दे देना,गोरा उसमें से एक पैसा भी नहीं लेगा। वह पुरुष है, पढ़-लिख चुका है, आप कमाकर खाएगा; वह दूसरे के धन में हिस्सा बँटाने ही क्यों जाएगा भला? वह राज़ी-खुशी रहे, बस, इतनी ही मेरी कामना है; किसी और जायदाद की मुझे ज़रूरत नहीं है।"

कृष्णदयाल, "नहीं, उसे एकबारगी वंचित नहीं करूँगा; जागीर उसी को दे दूँगा.... आगे चलकर साल में हज़ार रुपए की आमदनी तो उससे हो ही जाएगी। अभी जो सोचने का विषय है वह है उसके विवाह का मामला। अब तक तो जो किया सो किया, पर अब हिंदू-विधि से ब्राह्मण के घर उसका विवाह नहीं कर सकँगा.... इस पर चाहे तुम गुस्सा करो, चाहे जो करो।"

आनंदमई, "हाय-हाय! तुम समझते हो, तुम्हारी तरह सारी दुनिया पर गोबर और गंगाजल छिड़कती हुई नहीं फिरती इसलिए मुझे धर्म का ज्ञान ही नहीं है उसका विवाह ब्राह्मण के घर क्यों करने जाऊँगी, और गुस्सा क्यों करूँगी?"

कृष्णदयाल, "क्यों, तुम तो ब्राह्मण-कुल की हो!"

आनंदमई, "होती रहूँ ब्राह्मण-कुल की। बह्मनाई करना तो मैंने छोड़ ही दिया है। महिम के विवाह के समय भी मेरे रंग-ढंग को 'ख्रिस्तानी चाल'समझकर समधी लोग झंझट करना चाहते थे; मैं तब जान-बूझकर अलग हट गई थी- कुछ बोली ही नहीं। सारी दुनिया मुझे ख्रिस्तान कहती है, और भी जो कुछ कहती है.... मैं सब मान लेती हूँ... मानकर ही कहती हूँ- ख्रिस्तान क्या इंसान नहीं हैं। तुम्हीं जो इतनी ऊँची जाति

के और भगवान के इतने प्यारे हो, तो भगवान क्यों इस तरह तुम्हारा सिर कभी पठान, कभी मुग़ल और कभी ख्रिस्तान के पैरों में झुकवा देते हैं?"

कृष्णदयाल, "ये सब बड़ी-बड़ी बातें हैं। तुम औरत-जात वह नहीं समझोगी। लेकिन समाज भी कुछ है, यह तो समझती ह? उसे तो मानकर ही चलना होगा।"

आनंदमई, "मुझे समझाने की आवश्यता नहीं है। मैं तो इतना समझती हूँ कि मैंने जब गोरा को बेटा समझकर पाला-पोसा है, तब आचार-विचार का ढोंग करने से समाज रहे या न रहे, धर्म तो नहीं रहेगा। मैंने केवल धर्म के भय से ही कभी कुछ नहीं छिपाया। मैं तो कुछ मानती नहीं, यह मैं सभी को जता देती हूँ.... और सबकी घृणा पाकर चुपचाप पड़ी रहती हूँ। केवल एक बात मैंने छिपाई है; उसी के लिए भय से घुली जाती हूँ.... ठाकुरजी जाने कब क्या कर दें, मेरा तो मन होता है, गोरा से सारी बात कह दूँ, फिर भाग्य में जो होना बदा हो, वह हो।"

कृष्णदयाल ने हड़बड़ाकर कहा, "नहीं-नहीं! मेरे रहते यह किसी तरह नहीं हो सकेगा। गोरा का तुम जानती ही हो। यह बात सुनकर वह क्या कर बैठेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर समाज में एक हड़कंप मच जाएगी। और क्या इतना ही? उधर सरकार क्या करेगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। गोरा का बाप तो लड़ाई में मारा गया, और उसकी माँ भी मर गई, यह ठीक है; लेकिन सारा हंगामा शांत होने के बाद तो मजिस्ट्रेट को खबर देना ज़रूरी था! अब इसी बात को लेकर कोई उपद्रव खड़ा हो गया तो मेरा भजन-पूजन तो सब मिट्टी में मिलेगा ही, और भी क्या आफत उठ खड़ी होगी, इसका कोई ठिकाना है!'

निरुत्तर होकर आनंदमई बैठी रही। थोड़ी देर बाद कृष्णदयाल बोले, "गोरा के विवाह के बारे में मन-ही-मन मैं एक बात सोचता रहा हूँ। परेशबाबू भट्टाचार्य मेरे साथ पढ़ता था.... स्कूल की इन्स्पेक्टरी से रिटायर होकर पेंशन लेकर आजकल कलकत्ता आकर रहने लगा है। कट्टर ब्रह्म है। सुना है,उसके घर में कई लड़कियाँ भी हैं गोरा को किसी तरह उनके साथ मिला दिया जाय तो उसके घर आते-जाते रहने से परेशबाबू की कोई लड़की उसे पसंद भी कर सकती है। इसके आगे फिर ईश्वर को जो मंजूर हो।"

आनंदमई, "क्या कह रहे हो तुम? ब्रह्म के घर गोरा आए-जाएगा? वह दिन उसके गए?"

इसी समय गोरा अपने गंभीर स्वर में 'माँ' पुकारता हुआ कमरे में आया। कृष्णदयाल को वहाँ बैठे हुए देखकर वह कुछ विस्मित-सा हो गया;आनंदमई हड़बड़ाकर उठीं और गोरा के पास आकर ऑखों से स्नेह बरसाती हुई बोलीं, "क्यों बेटा, क्या चाहिए?"

"नहीं खास कुछ नहीं, फिर सही", कहकर गोरा वापस जाने लगा।

कृष्णदयाल बोले, "ज़रा ठहरो, एक बात कहनी है। मेरे एक ब्रह्म मित्र आजकल कलकत्ता आए हुए हैं, हेदोतल्ले में रहते हैं.... "

गोरा बोला, "कौन, परेशबाबू?"

कृष्णदयाल, "तुम उन्हें कैसे जानते हो?"

गोरा, "विनय उनके घर के पास ही रहता है, उसी से उनकी चर्चा सुनी है।"

कृष्णदयाल, "मैं चाहता हूँ, तुम उनका हाल-चाल पूछा आना!"

मन-ही-मन गोरा कुछ सोचता रहा। फिर सहसा बोला, "अच्छा, मैं कल ही जाऊँगा।"

आनंदमई कुछ विस्मय में आ गईं।

थोड़ी देर सोचकर गोरा ने कहा, "नहीं.... कल तो मेरा जाना नहीं हो सकेगा।"

कृष्णदयाल, "क्यों?"

गोरा, "कल मुझे त्रिवेणी जाना है।"

चौंककरकर कृष्णदयाल ने कहा, "त्रिवेणी!"

गोरा- "कल सूर्य-ग्रहण का नहान है।"

आनंदमई, "अब तुमसे क्या कहा जाय, गोरा! स्नान करना है तो कलकत्ता में भी तो गंगा है। त्रिवेणी गए बिना तेरा नहान नहीं होगा! तू तो देशभर के लोगों से बड़ा पंडित बन गया है!"

इस बात का कोई उत्तर दिए बिना गोरा चला गया।

गोरा के त्रिवेणी-स्नान करने जाने के संकल्प का कारण यह था कि वहाँ अनेक तीर्थ-यात्री इकट्ठे होंगे। उसी साधारण जनता के साथ घुल-मिलकर गोरा अपने को

देश की एक बहुत विशाल धारा में बहा देना और देश के हृदय की धड़कन अपने हृदय में अनुभव करना चाहता है। जहाँ भी गोरा को तनिक-सा मौका मिलता है, वहीं वह अपना सारा संकोच, अपने सारे पूर्व संस्कार बलपूर्वक छोड़कर देश की साधारण जनता के साथ मैदान में आ खड़ा होना चाहता है और पूरे संकल्प से कहना चाहता है- मैं तुम्हारा हूँ तुम सब मेरे हो।

विनय ने सुबह उठकर देखा, रात भर में आकाश साफ हो गया है। सुबह का प्रकाश दुधमुँहे शिशु की हँसी-सा निर्मल फैला रहा है। दो-एक उजले मेघ बिल्कुल निष्प्रयोजन भटकते हुए-से आकाश में तैर रहे हैं।

बरामदे में खड़ा-खड़ा वह एक और निर्मल प्रभात की याद से आनंदित हो रहा था कि तभी उसने देखा, एक हाथ में छड़ी और दूसरे हाथ में सतीश का हाथ पकड़े धीरे-धीरे परेशबाबू सड़क पर चले आ रहे हैं। सतीश ने विनय को बरामदे में देखते ही ताली बजाकर पुकारा, "विनय बाबू!"परेशबाबू ने मुँह ऊपर कर विनय को देखा। विनय जब जल्दी से नीचे उतर आया तब सतीश के संग-संग परेशबाबू ने भी उसके घर के भीतर प्रवेश किया।

विनय का हाथ पकड़ते हुए सतीश ने कहा, "विनय बाबू, आपने उस दिन कहा था कि हमारे घर आएँगे; अभी तक आए क्यों नहीं?"

स्नेह से सतीश की पीठ पर हाथ फेरता हुआ विनय हँसने लगा। परेशबाबू ने सावधानी से अपनी छड़ी मेज़ के सहारे खड़ी की और कुर्सी पर बैठते हुए बोले, "उस दिन यदि आप न होते तो हम लोग बड़ी मुसीबत में पड़ जाते। आपने बड़ा उपकार किया।"

शरमाते हुए विनय ने कहा, "क्या कहते हैं- कुछ भी तो नहीं किया मैंने।"

सहसा सतीश ने पूछा, "अच्छा विनय बाबू, आपके यहाँ कुत्ता नहीं है?"

हँसकर विनय ने कहा, "कुत्ता? नहीं, कुत्ता तो नहीं है।"

सतीश ने फिर से पूछा, "क्यों, कुत्ता क्यों नहीं पालते?"

विनय ने कहा, "कुत्तों की बात तो कभी सोची नहीं।"

परेशबाबू बोले, "मैंने सुना है, सतीश उस दिन आपके यहाँ आया था, ज़रूर आपको तंग करता रहा होगा। यह इतना बकता है कि इसकी बहन इसे 'बक्त्यार ख़िलजी' कहती है।"

इस बात का सतीश ने कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन फिर यह सोचकर कि उसके नए नामकरण से विनय के सामने कहीं उसकी बेइज्जती न हो गई हो, वह बेचैन हो उठा और बोला, "ठीक है, अच्छी बात है-बक्त्यार ख़िलजी ने तो लड़ाई लड़ी थी न? उसने तो बंगाल को जीत लिया था?"

हँसकर विनय ने कहा, "पुराने ज़माने में वह लड़ाई लड़ता था, आज-कल लड़ाई की ज़रूरत नहीं रही! अब वह अकेला वक्तृता करता है और बंगाल को जीत भी लेता है।'

बहुत देर तक ऐसी ही बातचीत होती रही। परेशबाबू सबसे कम बोले; केवल बीच में एक शांत मुस्कराहट उनके चेहरे पर खिल जाती, कभी एकाध छोटी-मोटी बात भी वह कह देते। चलते समय कुर्सी से उठते हुए बोले, "हमारा 78 नंबर का मकान यहाँ से सीधे दाहिने को.... "

बीच में ही सतीश बोला, "वह हमारा घर पहचानते हैं। अभी उस दिन तो मेरे साथ हमारे घर के दरवाजे तक गए थे।"

इस बात पर झेंपने का कोई औचित्य नहीं था; किंतु मन-ही-मन विनय ऐसा झेंपा मानो उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो।

वृध्द बोले, "तब तो आप घर पहचानते हैं। तब कभी आपका उधर.... "

विनय- "वह आपको कहना नहीं होगा....जब भी...."

परेशबाबू- "हम लोगों का तो एक ही मुहल्ला है; बड़ा शहर है इसीलिए अब तक जान-पहचान नहीं हुई।"

विनय बाहर तक परेशबाबू के साथ आया। द्वार पर वह थोड़ी देर खड़ा रहा। परेशबाबू धीरे-धीरे छड़ी के सहारे चले और सतीश उनके साथ....लगातार बोलता हुआ चला।

मन-ही-मन विनय ने कहा- परेशबाबू जैसा सज्जन वृध्द नहीं देखा। पैर छूने की इच्छा होती है। और सतीश भी कैसा तेज़ लड़का है! बड़ा होकर अच्छा आदमी होगा.... जितनी तीव्र बुध्दि है उतना ही सीधा स्वभाव है।

वृध्द और बालक कितने भी अच्छे क्यों न हों, इतने थोड़े परिचय से उन पर इतनी अधिक श्रध्दा और प्यार साधारणतया संभव नहीं होता। किंतु विनय के मन की अवस्था ऐसी थी कि उसे अधिक परिचय की ज़रूरत नहीं थी।

फिर मन-ही-मन विनय सोचने लगा- परेशबाबू के घर जाना ही होगा, नहीं तो बदतमीज़ी होगी। किंतु साथ ही गोरा का स्वर लेकर मानो उनके गुट का भारतवर्ष उसे टोकने लगा- तुम्हारा वहाँ आना-जाना नहीं हो सकता.... ख़बरदार!

कदम-कदम पर विनय ने गुट के भारतवर्ष के बहुत से नियम माने हैं। कई बार उसके मन में दुविधा भी उठी है, फिर भी नियम उसने मान लिया है। पर आज उसके मन में एक विद्रोह जाग उठा। उसका मन कहने लगा-यह भारतवर्ष तो केवल नियमों की मूर्ति है!

नौकर ने आकर सूचना दी कि भोजन तैयार है। किंतु अभी तक विनय नहाया भी नहीं! बारह बज चुके हैं! विनय ने सहसा ज़ोर से सिर हिलाकर कह दिया, "मैं नहीं खाऊँगा, तुम खा-पी लो!" उसने छाता उठाया और एकाएक बाहर निकल पड़ा, कंधे पर चादर भी उसने नहीं डाली।

सीधा वह गोरा के घर जा पहुँचा। विनय जानता था, एमहर्स्ट स्ट्रीट में एक मकान किराए पर लेकर वहाँ 'हिंदू-हितैषी-सभा' का दफ्तर रखा गया है, प्रतिदिन दोपहर को गोरा दफ्तर जाकर बैठता है और वहाँ से पूरे बंगाल में जहाँ भी उसके गुट के जो सदस्य हैं उन्हें चिट्ठियाँ लिखकर बढ़ावा देता है। और यहीं उसके भक्त उसके मुँह से उपदेश सुनने आते हैं और उसके साहायक होकर अपने को धन्य मानते हैं।

गोरा उस दिन भी दफ्तर गया हुआ था। विनय मानो दौड़ता हुआ सीधा भीतर आंनदमई के कमरे में जा खड़ा हुआ। आनंदमई उस समय भात परोसकर खाने बैठी थीं; लछमिया पास बैठी पंखा झल रही थी।

आश्चर्य से आनंदमई ने कहा, "क्यों विनय, क्या हुआ है तुम्हें?"

विनय ने उनके सामने बैठते हुए कहा, "माँ, बड़ी भूख लगी है, खाने को कुछ दो!"

आनंदमई ने सकुचाकर कहा, "यह तो तुमने बड़ी मुश्किल में डाल दिया। ब्राह्मण-ठाकुर तो चल गया है, और तुम तो.... '

विनय ने कहा, "मैं क्या ब्राह्मण-ठाकुर के हाथ का खाने यहाँ आया हूँ? ऐसा होता तो मेरे यहाँ ठाकुर ने ही क्या अपराध किया था? मैं तुम्हारी पत्तल का प्रसाद चाहता हूँ, माँ! लछमिया ला तो एक गिलास पानी मेरे लिए भी.... "

लछमिया के पानी देते ही विनय गट्-गट् करके पी गया। तब आनंदमई ने एक थाली और मँगाई; अपनी पत्तल से भात उठाकर वह उसमें परोसने लगीं और विनय साल-भर के भूखे की भाँति भात पर टूट पड़ा।

आनंदमई के मन का एक क्लेश आज दूर हुआ! उनके चेहरे पर प्रसन्नता देखकर विनय के मन पर से भी मानो एक बोझ उतर गया। आनंदमई फिर तकिए का गिलाफ सीने बैठ गईं। साथ के कमरे में सुगंधित कत्था तैयार करने के लिए केवड़े के फूल रखे गए थे, जिनकी सुगंध कमरे में फैल रही थी। पड़ गया और दुनिया को भूलकर पुराने दिनों की तरह सहजता से हँस-हँसकर बातें करने लगा।

इस बाधा के टूटते ही विनय के हृय में मानो एक वेगपूर्ण बाढ़ उमड़ने लगी। आनंदमई के कमरे से निकलकर बाहर सड़क पर आकर मानो वह एकाएक उड़ने लगा। उसके पाँव जैसे धरती पर नहीं पड़ रहे थे। उसकी इच्छा हुई जिस बात को लेकर पिछले कई दिन से वह मन-ही-मन संकोच से मरता रहा है, उसे मुँह खोलकर सबके सामने घोषित कर दे।

जिस समय विनय **78** नंबर के दरवाजे पर पहुँचा**,** ठीक उसी समय दूसरी ओर से परेशबाबू आते हुए दीखे।

"आइए-आइए, विनय बाबू, बड़ी खुशी हुई!" कहते हुए परेशबाबू विनय को सड़क की ओर वाले बैठने के कमरे में ले गए।

एक छोटी मेज; एक ओर पीठ वाली बेंच, दूसरी ओर लकड़ी और बेंत की कुर्सियाँ; दीवार पर एक तरफ ईसा का रंगीन चित्र और दूसरी तरफ केशव बाबा का फोटो। पिछले दो-चार दिन के अख़बार मेज़ पर तहाकर रखे हुए, उनके ऊपर काँच का पेपरवेट, कोने में एक छोटी अलमारी, जिसके ऊपर के ताक में थिओडोर पार्कर की पुस्तकों की कतार लगी हुई दीखती है। अलमारी के ऊपर कपड़े से ढँका हुआ ग्लोब रखा है। विनय बैठ गया,पर उसका दिल धड़कने लगा। उसकी पीठ-पीछे वाला दरवाज़ा खुला है, सहसा कोई उधर से आ गया तो.... !

परेशबाबू ने कहा, "सोमवार को सुचरिता मेरे एक मित्र की लड़की को पढ़ाने जाती है। वहाँ सतीश की उम्र का एक लड़का भी है, इसलिए सतीश भी उसके साथ गया है। मैं उन्हें वहाँ पहुँचाकर लौट रहा हूँ। और तनिक-सी भी देर हो जाती तो भेंट ही न होती!"

बात सुनकर विनय ने निराशा के आघात के साथ-साथ कुछ संतोष का भी अनुभव किया। परेशबाबू के साथ बातचीत एक बहुत ही सहज स्तर पर आ गई थी।

परेशबाबू ने बातों-ही-बातों में विनय के बारे में थोड़ा-थोड़ा करके बहुत कुछ जान लिया। विनय के माँ-बाप नहीं हैं; काका-काकी देस में रहकर काम सँभालते हैं। उसके दो चचेरे भाई भी उसके साथ रहकर पढ़-लिख रहे थे; बड़ा अब वकील होकर उनके ज़िले की कचहरी में वकालत करता है,छोटा कलकत्ता में रहता हुआ हैजे से चल बसा। काका की इच्छा है कि विनय डिप्टी-मजिस्ट्रेटी के लिए दौड़-धूप करे, किंतु विनय उस ओर कोई कोशिश न करके तरह-तरह के फिजूल के कामों में लगा हुआ है।

ऐसे ही करीब घंटा-भर बीत गया। बिना वजह और अधिक बैठना अशिष्टता होगी, यह सोचकर विनय उठ खड़ा हुआ और बोला, "अपने दोस्त सतीश से भेंट नहीं हुई, इसका दु:ख रह गया- उसे कह दीजिएगा मैं। आया था।'

परेशबाबू ने कहा, "ज़रा देर और ठहरें तो उन लोगों से भी भेंट हो जाएगी- अब तो वे आते ही होंगे।"

सिर्फ इतनी-सी बात का सहारा लेकर फिर बैठ जाने में विनय को संकोच हुआ। थोड़ा और ज़ोर देने से वह फिर बैठ जाता; किंतु परेशबाबू अधिक बोलने या आग्रह करने वाले व्यक्ति नहीं थे, इसलिए विदा ही लेनी पड़ी। परेशबाबू ने कहा, "बीच-बीच में आते रहिएगा, हमें खुशी होगी।"

बाहर सड़क पर आकर घर लौटने का कोई, कारण विनय को नहीं जान पड़ा। वहाँ कोई काम नहीं था। विनय अख़बारों में लिखता है; उसके अंग्रेज़ी लेखों की सभी बड़ी तारीफ करते हैं। किंतु पिछले कई दिन से लिखने बैठने पर उसके दिमाग़ में कुछ आता ही नहीं। मेज़ के सामने अधिक बैठे रहना मुश्किल होता है; मन भटकने लगता है। इसलिए आज विनय बिना कारण ही उल्टी दिशा में चल पड़ा।

दो कदम भी नहीं गया होगा कि उसे एक बाल-कंठ की पुकार सुनाई दी, "विनय बाबू, विनय बाबू!"

मुँह उठाकर उसने देखा, एक घोड़ा-गाड़ी के दरावाजे से झाँककर सतीश उसे पुकार रहा है। गाड़ी के भीतर साड़ी का पल्ला और सफेद आस्तीन का अंश देखकर विनय को यह पहचानने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि दूसरा व्यक्ति कौन है।

बंगाल शिष्टाचार के अनुसार गाड़ी की ओर और देर झाँकना विनय के लिए असंभव था। पर इसी बीच सतीश गाड़ी से उतरकर उसके पास आ गया और उसका हाथ पकड़ता हुआ बोला, "चलिए हमारे घर!"

विनय ने कहा, "अभी तुम्हारे घर से ही तो आ रहा हूँ।"

सतीश- "वाह, तब हम लो तो नहीं थे। फिर चलिए!"

विनय सतीश के आग्रह को टाल न सका। कैदी को लिए हुए घर में प्रवेश करता हुआ सतीश पुकारकर बोला, "बाबा, विनय बाबू को पकड़ लाया।"

वृध्द बाहर निकलते हुए मुस्कराकर बोले, "अब आप ठीक पकड़ में आ गए हैं, जल्दी छुटकारा नहीं मिलने का। सतीश, अपनी दीदी को तो बुला ला!"

विनय कमरे में आकर बैठ गया। उसकी साँस वेग से चलने लगी। परेशबाबू बोले, "आप हाँफ गए शायद सतीश बड़ा ज़िद्दी लड़का है।"

सतीश जब बहन को साथ लिए हुए कमरे में आया तब विनय ने पहले एक हल्की-सी सुगंध पाई और फिर सुना, परेशबाबू कह रहे थे, "राधो,विनय बाबू आए हैं.... उन्हें तो तुम सब जातने ही हो।"

विनय ने मानो चकित-सा होकर मुँह उठाकर देखा, सुचरिता उसे नमस्कार करके सामने की कुर्सी पर बैठ गई। इस बार विनय प्रति-नमस्कार करना नहीं भूला।

सुचरिता ने कहा "यह चले जा रहे थे, इन्हें देखते ही सतीश को रोकना मुश्किल हो गया- गाड़ी से कूदकर इन्हें खींचकर ले आया। आप शायद किसी काम से जा रहे थे- आपको कोई असुविधा तो नहीं हुई?"

सीधे निनय को संबोधित करके सुचरिता कोई बात कहेगी, ऐसा विनय ने बिल्कुल नहीं सोचा था। सकपकाकर बोला, "नहीं, मुझे कोई काम नहीं था.... कोई असुविधा नहीं हुई।"

सतीश ने सुचरिता का आँचल पकड़कर खींचते हुए कहा, "दीदी, ज़रा चाबी देना तो- अपना वह आर्गन विनय बाबू को दिखाएँ।"

हँसती हुई सुचरिता बोली, "बस, अब रिकार्ड शुरू हुआ! वक्त्यार की किसी से दोस्ती हुई नहीं कि उसकी शामत आई। आर्गन तो उसे सुनना ही होगा.... और भी कई मुसीबतें उसकी किस्मत में लिखी हैं। विनय बाबू, आपका यह दोस्त है तो छोटा, पर इसकी दोस्ती की ज़िम्मेदारी बहुत भारी है। न मालूम आप निभा भी सकेंगे या नहीं?"

सुचरिता की ऐसी निस्संकोच बातचीत में वह भी कैसे सहज रूप से भाग ले सकता है, यह विनय किसी तरह सोच ही नहीं सका। वह शरमाएगा नहीं, इसकी दृढ़ प्रतिज्ञा करके भी किसी तरह टूटे-फूटे स्वर में वह इतना ही कह पाया, "नहीं, वह कुछ नहीं.... आप उसका.... मैं.... मुझे तो अच्छा ही लगता है।"

बहन से चाबी लेकर सतीश ने आर्गन निकाला और उसे लेकर आ खड़ा हुआ। चौकोर काँच से मढ़े हुए, तरंगित सागर की तरह रंगे हुए नीले कपड़े पर खिलौना-जहाज़ था; सतीश के चाबी भरते ही आर्गन के सुर-ताल के साथ जहाज़ डगमगाता हुआ चलने लगा। सतीश एक क्षण जहाज़ की ओर और दूसरे क्षण विनय के चेहरे की ओर देखता हुआ अपनी चंचलता को किसी तरह भी छिपा नहीं पा रहा था।

इस प्रकार सतीश के बीच में रहने से धीरे-धीरे विनय का संकोच टूट गया और धीरे-धीरे बीच-बीच में मुँह उठाकर सुचरिता से दो-एक बात कर लेना भी उसके लिए असंभव न रह पाया।

बिना प्रसंग के ही सतीश ने सहसा पूछ लिया, "अपने मित्र को एक दिन हमारे यहाँ नहीं लाएँगे?"

इस पर विनय के मित्र के बारे में सवाल पूछे जाने लगे। परेशबाबू हाल ही में कलकत्ता आए हैं, इसलिए वे लोग गोरा के संबंध में कुछ नहीं जानते। विनय अपने मित्र की बात करता हुआ उत्साहित हो उठा। गोरा में कैसी असाधारण प्रतिभा है, उसका हृदय कितना विशाल है, उसकी शक्ति कैसी अटल है, इसका बखान करते हुए मानो विनय की जैसे बात ही खत्म नहीं हो रही थी। गोरा एक दिन सारे भारतवर्ष पर दोपहर के सूरज की तरह चमक उठेगा- विनय को इसमें ज़रा भी शंका नहीं थी।

बात कहते-कहते विनय का चेहरा मानो दमक उठा और उसका सारा संकोच एकाएक क्षीण हो गया। बल्कि गोरा के सिध्दांतों के विषय में परेशबाबू के साथ थोड़ा वाद-विवाद भी हुआ। विनय ने कहा, "गोरा हिंदू-समाज को जो समूचा ऐसे नि:संकोच ग्रहण कर पाता है उसकी वजह यही है कि वह बहुत ऊँचाई से भारतवर्ष को देखता है। उसके लिए भारतवर्ष के छोटे-बड़े सब एक विराट ऐक्य में बँधे हैं, एक बृहत् संगीत माला में घुल-मिलकर संपूर्ण दिखाई देते हैं। वैसे देख पाना हम सबके लिए संभव नहीं है, तभी हम लोग भारतवर्ष के टुकड़े-टुकड़े करके, विदेशी आदर्शों के साथ उनकी तुलना करके भारत के साथ अन्याय ही करते हैं।"

सुचरिता बोली, "आप क्या कहते हैं, कि जाति-भेद अच्छा है?"

बात ऐसे कही गई थी मानो इस बारे में आगे कोई बहस हो ही नहीं सकती।

विनय बोला, "जाति-भेद न अच्छा है, न बुरा। यानी कहीं अच्छा है तो कहीं बुरा। यदि पूछा जाय कि हाथ अच्छी चीज़ है कि बुरी, तो मैं कहूँगा,सारे शरीर में मिलाकर देखें तो अच्छी चीज़ है। किंतु यदि पूछें कि उड़ने के लिए अच्छी है या नहीं, तो मैं कहूँ कि नहीं-वैसे ही जैसे मुट्ठी में पकड़ने के लिए डैने अच्छ चीज़ नहीं हैं।"

उत्तेजित होकर सुचरिता ने कहा, "वह सब बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं यह पूछती हूँ कि क्या आप जाति-भेद मानते हैं?"

और किसी से बहस होती तो विनय ज़ोर देकर कहता, "हाँ, मानता हूँ।" किंतु आज ज़ोर देकर वह ऐसा नहीं कह सका। यह उसकी भीरुता थी या वास्तव में जाति-भेद मानता हूँ यह बात कहाँ तक जाती है वहाँ तक जाना उसे आज स्वीकार नहीं होता, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। बहस अधिक न बढ़े, इस विचार से परेशबाबू ने बात बदलते हुए कहा, "राधो, माँ को और बाकी सब लोगों को बुला लाओ तो-इनसे परिचय करा दूँ।"

सुचरिता के उठकर बाहर जाते समय सतीश भी बात करते-करते कूदता हुआ उसके पीछे-पीछे चला गया।

कुछ देर बाद ही सुचरिता ने लौटकर कहा, "बाबा, आप सबको माँ ऊपर बरामदे में बुला रही है।"

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय